९. धवलाकारके सन्मुख उपस्थित साहित्य

सत्प्ररुपणामें उल्लिखित साहित्य .

धवला और जयधवलाको देखनेसे पता चलता है कि उनके रचयिता वीरसेन आचार्यके सन्मुख बहुत विशाल जैन साहित्य प्रस्तुत था। सत्प्ररूपणाका जो भाग अब प्रकाशित हो रहा है उसमें उन्होंने सत्कर्मप्राभृत व कषायप्राभृतके नामोल्लेख व उनके विविध अधिकारोंके उल्लेख व अवतरण उल्लिखित आदि दिये हैं१ (१ पृ. २०८, २२१, २२६ आदि)। इनके अतिरिक्त सिध्दसेन दिवाकरकृत साहित्य सन्मतितर्कका 'सम्मइसुत्त' (सन्मतिसूत्र) नामसे उल्लेख किया है और एक स्थलपर उसके कथनसे विरोध बताकर उसका समाधान किया है, तथा उसकी सात गाथाओंको उद्धृत किया है२ (२ पृ. १५ व गाथा नं. ५, ६, ७, ८, ९, ६७, ६९.) । उन्होंने अकलंकदेवकृत तत्वार्थराजवार्तिकका 'तत्वार्थभाष्य' नामसे उल्लेख किया है और उसके अनेक अवतरण कहीं शब्दश: और कहीं कुछ परिवर्तनके साथ दिये हैं३(३ पृ. १०३, २२६, २३२, २३४, २३९.) । इनके सिवाय उन्होंने जो २१६ संस्कृत व प्राकृत पद्य बहुधा 'उक्तं च' कहकर और कहीं कहीं विना ऐसी सूचनाके उद्धृत किये हैं उनमेंसे हमें ६ कुन्दकुन्दकृत प्रवचनसार, पंचास्तिकाय व उसकी जयसेनकृत टिकामें१ (१ गाथा नं. १, १३, ४६, ७२, ७३, १९८.), ७ तिलोयपण्णत्तिमें२ (२ गाथा नं. २०, ३५, ३७, ५५, ५६, ६०.), १२ वट्टकेरकृज्ञ मूलाचारमें३ (३ गाथा नं. १८, ३१, (पाठभेद) ६५ (पाठभेद) ७०, ७१, १३४, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२.), १ अकलंकदेवकृत लघीयस्त्रयीमें४ (४ गाथा नं. ११.), २ मूलाराधनामें५ (५ गाथा नं. १६७, १६८.), ५ वसुनन्दिश्रावकाचारमें६ (६ गाथा नं. ५८,१६७,१६८,३०,७४.), १ प्रभाचन्द्रकृत शाकटायन-न्यासमें७ (७ गाथा नं. २.), १ देवसेनकृत नयचक्रमें८ (८ गाथा नं. १०), व १ विद्यानन्द आप्तपरीक्षामें९ (९ गाथा नं. २२.), मिलें हैं। गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, व जीवप्रबोधनी टीकामें इसकी ११० गाथाएं पाई गई हैं जो स्पष्टत: वहांपर यहींसे ली गई हैं। कई जगह तिलोयपण्णत्तिकी गाथाओंके विषयका उन्हीं शब्दोंमें संस्कृत पद्य अथवा गद्यद्वारा वर्णन किया है१० (१० देखो पृ. १०,२८,२९,३२,३३, आदि,) व यतिवृषभाचार्यके मतका भी यहां उल्लेख आया है११ (११ देखो पृ. ३०२.), । इनके अतिरिक्त इन गाथाओंमेंसे अनेक श्वेताम्बर साहित्यमें भी

मिली हैं। सन्मतितर्ककी सात गाथाओंका हम ऊपर उल्लेख कर ही आये हैं। उनके सिवाय हमें ५ गाथाएं आचारांगमें१२ (१२ गाथा नं. १४,१४९,१५०,१५१,१५२ (पाठभेद).), १ बृहत्कल्पसूत्रमें१३(१३ गाथा नं. ६२.), ३ दशवैकालिकसूत्रमें१४ (१४ गाथा नं. ३४,७०,७१.), १ स्थानांग टीकामें१५ (१५ गाथा नं. ८८.), १ अनुयोगद्वारमें१६ (१६ गाथा नं. १४.), व २ आवश्यक-निर्युक्तीमें१७ (१७ गाथा नं. ६८, १००.), मिली हैं। इसके अतिरिक्त और विशेष खोज करनेसे दिगम्बर और श्वेताम्बर साहित्यमें प्राय: सभी गाथाओंके पाये जानेकी संभावना है।

सूत्र-पुस्तकोंमें पाठभेद व मतभेद

किंतु वीरसेनाचार्यके सन्मुख उपस्थित साहित्यकी विशालताको समझनेके लिये उनकी समस्त रचना अर्थात् धवला और जयधवलापर कमसे कम एक विहंगम-दृष्टि डालना आवश्यक है। यह तो कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि उनके सन्मुख पुष्पदन्त, भूतबलि व गुणधर आचार्यकृत पूरा सूत्र-साहित्य प्रस्तुत था। पर इसमें भी यह बात उल्लेखनीय है कि इन सूत्र-ग्रंथोंके अनेक संस्करण छोटे-बडे पाठ-भेदोंको रखते हुए उनके सन्मुख विद्यमान थे। उन्होंने अनेक जगह सूत्र-पुस्तकोंके भिन्न भिन्न पाठों और तज्जन्य मतभेदोंका उल्लेख और यथाशक्ति समाधान किया है१८ (१८ केसु वि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदस्संतरं छम्मासा। धवला अ. ३४५. केसु वि सुत्तपोत्थएसु उवलब्भइ, तदो एत्थ उवएसं लद्धूण वत्तव्वं। धवला. अ. ५९१. केसु वि सुत्तपोत्थएसु विदियमध्दमस्सिदूण परू विद-अप्पाबहुअभावादो। धवला. अ. १२०६. केसु वि सुत्तपोत्थएसु एसो पाठो। धवला. अ. १२४३.) ।

कहीं कहीं सूत्रोंमें परस्पर विरोध पाया जाता था। ऐसे स्थलोंपर टीकाकारने निर्णय करनेमें अपनी असमर्थता प्रगट की है और स्पष्ट कह दिया है कि इनमें कौन सूत्र है और कौन असूत्र है इसका निर्णय आगममें निपुण आचार्य करें। हम इस विषयमें कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि, हमें इसका उपदेश कुछ नही मिला१ (१ तदो तेहि सुत्तेहि एदेसिं सुत्ताणं विरोहो होदि त्ति भणिदे जदि एवं उवदेसं लद्धूण इदं सुत्तं इदं चासुत्तमिदि आगम-णिउणा भणंतु, ण च अम्हे एत्थ वोत्तुं समत्था अलध्दोवदेसत्तादो। धवला. अ. ५६३.)। कहीं उन्होंने दोनों विरोधी सूत्रोंका व्याख्यान कर दिया है, यह कह कर कि 'इसका निर्णय तो चतुर्दश पूर्वधारी व केवलज्ञानी ही कर सकते हैं, किंतु वर्तमान कालमें वे हैं नहीं, और अब उनके पाससे सुनकर आये हुए भी कोई नहीं

पाये जाते। अतः सूत्रोंकी प्रामाणिकता नष्ट करनेसे डरनेवाले आचार्योंको तो दोनों सूत्रोंका व्याख्यान करना चाहिये२' (२ होदु णाम तुम्हेहि वुत्तत्थस्स सेच्चत्तं, बहुएसु सुत्तेसु वणप्फदीणं उवरि णिगोदपदस्स अणुवलंभादो। X X चोद्दसपुव्वधरो केवलणाणी वा, ण च वट्टमाणकाले ते अत्थि। ण च तेसिं पासे सोदूणागदा वि संपहि उवलब्भंति। तदो थप्पं काऊण वे वि सुत्ताणि सुत्तासायण-भीरुहि आयरिएहि वक्खाणेयव्वाणि। धवला. अ. ५६७.)। कहीं कहीं तो सूत्रोंपर उठाई गई शंका पर टीकाकारने यहांतक कह दिया है कि 'इस विषयकी पूछताछ गौतमसे करना चाहिये, हमने तो यहां उनका अभिप्राय कहा है३' (३ सुत्ते वणप्फदिसण्णा किण्ण णिद्दिट्ठि ? गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो। अम्हेहि गोदमो बादरणिगोद-पदिट्ठिदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अभिप्पाओ कहिओ। धवला. अ. ५६७.) ।

सूत्रविरोधका कहीं कहीं ऐसा कहकर भी उन्होंने समाधान किया है कि 'यह विरोध तो सत्य है किंतु एकान्तग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, वह विरोध सूत्रोंका नहीं है, किंतु इन सूत्रोंके उपसंग्रहकर्ता आचार्य सकल श्रुतके ज्ञाता न होनेसे उनके द्वारा विरोध आ जाना संभव है४ (४ कसायपाहुडसुत्तेणेदं सुत्तं विरुज्झदि त्ति वुत्ते सच्चं विरुज्झइ किंतु एयंतग्गहो एत्थ ण कायव्वो। X X कथं सुत्ताणं विरोहो ? ण, सुत्तोवसंधाराणमसयलसुद-धारयाइरियपरतंताणं-विरोह-संभव-दंसणादो। धवला. अ. ५८९.)। इससे वीरसेन स्वामीका यह मत जाना जाता है कि सूत्रोंमें पाठ-भेदादि परंपरागत आचार्योंद्वारा भी हो चुके थे। और यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि, उनके उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि सूत्रोंका अध्ययन कई प्रकारसे चला करता था जिसके अनुसार कोई सूत्राचार्य थे५ (५ सुत्ताइरिय-वक्खाण-पसिध्दो उवलब्भदे। तम्हा तेसु सुत्ताइरिय-वक्खाण-पसिद्धेण, ध. २९४.), कोई उच्चारणाचार्य६ (६ एसो उच्चारणाइरिय-अभिप्पाओ। धवला अ. ७६४. एदेसिमणियोगद्दाराणमुच्चारणाइरियो-:वएसबलेण परूवणं वत्तइस्सामो। जयध. अ. ८४२.), कोई निक्षेपाचार्य७ (७ णिक्खेवाइरिय-परू विद-गाहाणमत्थं भणिस्सामो। धवला. अ. ८६३.) और कोई व्याख्यानाचार्य८ (८ वक्खाणाइरिय-परूविदंवत्तइस्सामो। धवला. अ. १२३५. वक्खाणाइरियाणमभावादो। धवला. अ. ३४८.)। इनसे भी ऊपर 'महावाचकोंका' पद ज्ञात होता है९ (९ महावाचयाणमज्जमंखुसमणाणमुवदेसेण . . . . . . महावाचयाणमज्जणंदीणं उवदेसेण।

धवला. अ. १४५७. महावाचया अज्जिणंदिणो संतकम्मं करेंति। ट्ठिदिसंतकम्मं पयासंति। धवला. अ.१४५८. अज्जमंखु-णागहत्थि-महावाचय-मुहकमल-विणिग्गएण सम्मत्तस्स। जयध. अ. ९७३.)। कषायप्राभृतके प्रकाण्ड ज्ञाता आर्यमंक्षु और नागहस्तिको अनेक जगह महावाचक कहा है। आर्यनन्दिका भी महावाचकरुपसे एक जगह उल्लेख है। संभवत: ये स्वयं वीरसेनके गुरु थे जिनका उल्लेख धवलाकी प्रशस्तिमें भी किया गया है।

धवलाकारने कई जगह ऐसे प्रसंग भी उठाये हैं जहां सूत्रोंपर इन आचार्योंका कोई मत उपलब्ध नहीं था। इनका निर्णय उन्होंने अपने गुरुके उपदेशके बल पर१ (१ कधमेदं णव्वदे ? गुरुवदेसादो। धवला. अ. ३१२.) व परंपरागत उपदेशद्वारा२ (२ सुत्ताभावे सत्त चेव खंडाणि कीरंति त्ति कधं णव्वदे ? ण, आइरिय-परंपरागदुवदेसादो। धवला. अ. ५९२.) तथा सूत्रोंसे अविरुध्द अन्य आचार्योंके वचनोंद्वारा३ (३ कुदो णव्वदे ? अविरुध्दाइरियवयणादो सुत्त-समाणादो। धवला. अ. १२५७. सुत्तेण विणा . . . . कुदो णव्वदे ? सुत्तविरुध्दाइरियवयणादो। धवला. अ. १३३७.) किया है।

धवला पत्र १०३६ पर तथा जयधवलाके मंगलाचरणमें कहा गया है कि गुणधराचार्य विरचित कषायप्राभृत आचार्यपरंपरासे आर्यमंक्षु और नागहस्ति आचार्योंको प्राप्त हुआ और उनसे सीखकर यतिवृषभने उनपर वृत्तिसूत्र रचे। वीरसेन और जिनसेनके सन्मुख, जान पडता है, उन दोनों आचार्योंके अलग अलग व्याख्यान प्रस्तुत थे, क्योंकि, उन्होंने अनेक जगह उन दोनोंके मतभेदोंका उल्लेख किया है४ (४ कम्मट्ठिदि त्ति अणियोगद्दारे हि भण्णमाणे वे उवदेसा होंति। जहण्णुक्कस्सट्ठिदीणं पमाणपरूवणा कम्मट्ठिदिपरूवणे त्ति णागहत्थि-खमासमणा भणंति। अज्जमंखुखमासमणा पुण कम्मट्ठिदिपरूवणे त्ति भणंति। एवं दोहि उवदेसेहि कम्मट्ठिदिपरूवणा कायव्वा। (धवला. अ.१४४०.) एत्थ दुवे उवएसा . . महावाचयाण-मज्जमंखुखवणाणमुवएसेण लोगेपूरिदे णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंत-कम्मं अंतोमुहुत्तपमाणं होदि। जयध. अ. १२३९.) तथा उन्हें महावाचकके अतिरिक्ति 'क्षमाश्रमण' भी कहा है। यतिवृषभकृत चूर्णिसूत्रोंकी पुस्तक भी उनके सामने थी और उसके सूत्र-संख्या-क्रमका भी वीरसेनने बडा ध्यान रक्खा है५ (५ जइवसह-चुण्णिसुत्तम्मि णव-अंकुवलंभादो। . . जइवसहठविद-बारहंकादो। जयध. अ. २४.) ।

उत्तर और दक्षिण प्रतिपत्ति

सुत्रों औरउनके व्याख्यानोंमें विरोधके अतिरिक्त एक और विरोधका उल्लेख मिलता है जिसे धवलाकांरन उत्तर-प्रतिपति और दक्षिण-प्रतिपत्ति कहा है। ये दो भिन्न मान्यताएं थी दक्षिण-प्रतिपत्तिको स्वीकार करते थे, क्योंकि, वह ऋजु अर्थात् सरल सुस्पष्ट और आचार्य-परंपरागत है, तथा उत्तर-प्रतिपत्ति अनृजु है और आचार्य-परंपरागत नहीं है । धवलामें इस प्रकारके तीन मतभेद हमारे दृष्टिगोचर हुए हैं। प्रथम द्रव्यप्रमाणानुयोगद्वारमें उपशमश्रेणीकी संख्या ३०४ बताकर कहा है--

‘केवि पुवुत्तपमाणं पंचूणं करेंति । एदं पंचूणं वक्खाणं पवाइज्जमाणं दक्खिणमाइरिय-परंपरागयमिदि जं वुत्तं होई । पुव्वुत्त-वक्खाणमपवाइज्ज-माणं वाउं आइरियपरंपरा-अणागदमिदिणायव्वं’

अर्थात् कोई कोई पूर्वोक्त प्रमाणमें पांचकी कमी करते हैं। यह पांचकी कमीका व्याख्यान प्रवचन-प्राप्त है, दक्षिण है और आचार्य-परंपरागत है। पूर्वोक्त व्याख्यान प्रवचन-प्राप्त नहीं है, वाम है और आचार्यपरंपरासे आया हुआ भी नहीं है, ऐसा जानना चाहिये।

इसीकेआगे क्षपकश्रेणीकी संख्या ६०५ बताकर कहा गया है--

एसा उत्तर-पडिवत्ती। एत्थ दस अवणिदे दक्खिण-पडिवत्ती हवदि।

अर्थात् यह (६०५ की संख्यासंबंधी) उत्तर प्रतिपत्ति है। इसमेंसे दश निकाल देनेपर दक्षिण-प्रतिपत्ति हो जाती है।

आगे चलकर द्रव्यप्रमाणानुयोगद्वारमें ही संयतोंकी संख्या ८९९९९९७ बतलाकर कहा है 'एसा दक्खिण-पडिवत्ती'। इसके अन्तर्गत भी मतभेदादिका निरसन करके, फिर कहा है ‘एत्तो उत्तर-पडिवत्तिं वत्तइस्सामो’ और तत्पश्चात् संयतोंकी संख्या ६९९९९९६ बतलाई है। यहां इनकी समीचीनताके विषयमें कुछ नहीं कहा।

दक्षिण-प्रतिपत्तिके अंतर्गत एक और मतभेदका भी उल्लेख किया गया है। कुछ आचार्योंने उक्त संख्याके संबंधमें जो शंका उठाई है उसका निरसन करके धवलाकार कहते हैं-

'जं दूसणं भणिदं तण्ण दूसणं, बुध्दिविहूणाइरियमुहविणिग्गयत्तादो।'

अर्थात् 'जो दूषण कहा गया है वह दूषण नहीं है, क्योंकि, वह बुद्धिविहीन आचार्योंके मुखसे निकली हुई बात है'। संभव है वीरसेन स्वामीने किसी समसामायिक आचार्यकी शंकाको ही दृष्टिमें रखकर यह भर्त्सना की हो।

उत्तर और दक्षिण प्रतिपत्ति भेदका तीसरा उल्लेख अन्तरानुयोगद्वारमें आया है जहां तिर्यंच और मनुष्योंके सम्यक्त्व और संयमादि धारण करनेकी योग्यताके कालका विवेचन करते हुए लिखते हैं---

'एत्थ वे उवदेसा, तं जहा-तिरक्खेसु वेमासमुहुत्तपुधत्तस्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च जीवो पडिवज्जदि। मणुसेसु गब्भादिअट्ठवस्सेसु अंतोमुहुत्तब्भहिएसु सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि त्ति। एसा दक्खिणपडिवत्ती । दक्खिणं उज्जुवं आइरियपरंपरागदमिदि एयट्ठो। तिरिक्खेसु तिण्णि पक्ख तिण्णि दिवस अंतोमुहुत्तस्सुवरि सम्मतं संजमासंजमं च पडिवज्जदि। मणुसेसु अट्ठवस्साणमुवरि सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि। एसा उत्तरपडिवत्ती, उत्तरमणुज्जुवं आइरियपरंपराए णागदमिदि एयट्ठो धवला. अ. ३३०

इसका तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व और संयमासंयमादि धारण करनेकी योग्यता दक्षिण प्रतिपत्तिके अनुसार तिर्यंचोंमें (जन्मसे) २ मास और मुहुर्तपृथक्त्वके पश्चात् होती है, तथा मनुष्योंमें गर्भसे ८ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् होती है। किन्तु उत्तर प्रतिपत्तिके अनुसार तिर्यंचोंमें वही योग्यता ३ पक्ष, ३ दिन और अन्तर्मुहूर्तके उपरान्त, तथा मनुष्योंमें ८ वर्षके उपरान्त होती है। धवलाकारने दज्ञिण प्रतिपत्तिको यहां भी दक्षिण, ऋजु व आचार्य-परंपरागत कहा है और उत्तर प्रतिपत्तिको उत्तर, अनृजु और आचार्य-परम्परासे अनागत कहा है।

हमने इन उल्लेखोंका दूसरे उल्लेखोंकी अपेक्षा कुछ विस्तारसे परिचय इस कारण दिया है, क्योंकि, यह उत्तर और दक्षिण प्रतिपत्तिका मतभेद अत्यन्त महत्वपूर्ण और विचारणीय है। संभव है इनसे धवलाकारका तात्पर्य जैन समाजके भीतरकी किन्ही विशेष साम्प्रदायिक मान्यताओंसे ही हो ?

तिलोयपण्णत्ति सूत्र व यतिवृषभाचार्य

धवलामें जिन अन्य आचार्यों व रचनाओंके उल्लेख दृष्टिगोचर हुए है वे इस प्रकार हैं। त्रिलोकप्रज्ञप्तिको धवलाकारने सूत्र कहा है और उसका यथास्थान खूब उपयोग किया है१ (१ तिरियलोगो त्ति तिलोयपणत्तिसुत्तादो। धवला. अ. १४३. चंदाइच्चबिंबपमाणपरुवयतिलोयपण्णत्तिसुत्तादो। धवला. अ. १४३. तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारि। धवला. अ. २५९.)। हम उपर कह आये हैं कि सत्प्ररुपणामें तिलोयपण्णत्तिके मुद्रित अंशकी सात गाथाएं ज्योंकि त्यों जाती हैं और उसके कुछ प्रकरण भाषा-परिवर्तन करके ज्योंके त्यों लिखे गये है। इस ग्रंथके कर्ता यतिवृषभाचार्य कहे जाते है जो जयधवलाके अन्तर्गत कषायप्राभृतपर चूर्णिसूत्र रचनेवाले यतिवृषभसे अभिन्न प्रतीत होते हैं२ (२ **Catlogue of Sans. & Prak. Mss. in C.P.& Berar, Intro. p.X V.**)। सत्प्ररुपणामें भी यतिवृषभकए उल्लेख आया है३ (३ यतिवृषभोपदेशात् सर्वघातिकर्मणां इत्यादि। धवला. अ. ३०२.) व आगे भी उनके मतका उल्लेख किया गया है४ (४ एसो दंसणमोहणीय-उवसामओ त्ति जइवसहेण भणिदं। धवला. अ. ४२५.)।

पंचत्थिपाहुड

कुंदकुंदके पंचास्तिकायका 'पंचत्थिपाहुड' नामसे उल्लेख आया है और उसकी दो गाथाएं भी उद्भृत की गई हैं५ (५ धवला. अ. २८९ 'वुत्तं' च 'पंचत्थिपाहुडे' कहकर चार गाथाएं उद्भृत की गई हैं जिनमेंसे दो पंचास्तिकायमें क्रमश: १०८, १०७ नंबर पर मिलती हैं। अन्य दो 'ण य परिणमइ सयं सो' आदि व 'लोयायासपदेसे' आदि गाथाएं हमारे सन्मुख वर्तमान पंचास्तिकायमें दृष्टिगोचर नहीं होती। किन्तु वे दोनों गो. जीवमें क्रमश: नं. ५७० और ५८९ पर पाई जाती हैं। धवलाके उसी पत्रपर आगे पुन: वही 'वुत्तं च पंचंत्थिपाहुडे' कहकर तीन गाथाएं उदधृत की हैं जो पंचास्तिकायमें क्रमश: २३,२५ और २६ नं. पर मिलती हैं। (पंचास्तिकायसार, आरा, १९२०.))।

सत्प्ररुपणामें उनके ग्रंथोंके जो अवतरण पाये जातते हैं उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। परिकर्म ग्रंथके उल्लेख और उसके साथ कुंदकुंदाचार्यके संबन्धका विवेचन भी हम ऊपर कह आये हैं६ (६ देखो ऊपर पृ. ४६ आदि.)।

गृध्दपिच्छाचार्यकृत तत्त्वार्थसूत्र

धवलाकारने तत्वार्थसूत्रको गृध्दपिच्छाचार्यकृत कहा है और उसके कई सूत्र भी उद्‌धृत किये हैं७ (७ देखो पृ. १५१, २३२, २३६, २३९, २४०.)। इससे तत्वांर्थसूत्रसंबन्धी एक श्लोक व श्रवणबेलगोलके कुछ शिलालेखोंके उस कथनकी पुष्टि होती है जिसमें उमास्वातिको 'गृध्दपंछोपलांछित' कहा है। सत्प्ररुपणामें भी तत्वार्थसूत्रकेअनेक उल्लेख आये हैं।

आचारांग

धवलामें एक गाथा इस प्रकारसे उद्‌धृत मिलती है--

पंचत्थिकाया य छज्जीवणिकायकालदव्वमण्णे य।
आणागेज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि।।
धवला. अ. २८९

यह गाथा वट्टकेरकृत मूलाचारमें निम्न प्रकारसे पाई जाती है--

पंचत्थिकायछज्जीवणिकाये कालदव्वमण्णे य।
आणागेज्झे भावे आणाविचयेण विचिणादि।। ३९९।।

यदि उक्त गाथा यहींसे धवलामें उद्‌धृत की गई हो तो कहा जा सकता है कि उस समय मूलाचारकी प्रख्याति आचारांगके नामसे थी।

पूज्यपादकृत सारसंग्रह

स्वामी समन्तभद्रके जो उल्लेख दृष्टिगोचर होते हैं उनका परिचय हम षट्‌खंडागमकी अन्य टीकाओंकेप्रकरणमें करा ही आये हैं।

धवलाकारने नयका निरुपण करते हुए एक जगह पूज्यपादद्वारा सारसंग्रहमें दिया सारसंग्रह हुआ नयका लक्षण उद्‌धृत किया है। यथा--

सारसंग्रहेऽप्युक्तं पूज्यपादै:- अनन्तपर्यायात्मकस्य वस्तुनोऽन्यतम-पर्यायाधिगमे कर्तव्ये जात्यहेत्वपेक्षो निरवद्यप्रयोगो नय इति।   धवला. अ. ७०० वेदनाखंड

पहले अनुमान होता है कि संभव है पूज्यपादकृतं सर्वार्थसिध्दिको ही यहां सारसंग्रह कहा गया हो। किन्तु उपलब्ध सर्वार्थसिध्दिमें नयका लक्षण इस प्रकारसे नहीं पाया जाता। इससे पता चलता है कि पूज्यपादकृत सारसंग्रह नामका कोई और ग्रन्थ धवलाकारके सन्मुख था। ग्रंथके नामपरसे जान पडता है कि उसमें सिध्दान्तोंका मथितार्थ संग्रह किया गया होगा। संभव है ऐसे ही सुन्दर लक्षणोंको दृष्टिमें रखकर धनञ्जयने अपने नाममालाकोषकी प्रशस्तिमें पूज्यपादके 'लक्षण' को अपश्चिम अर्थात् बेजोड कहा है। यथा--

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
द्विसंधानकवे: काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्।।२०३।।

पूज्यपाद भट्टारक अकलंक

अकलंकदेवकृत तत्वार्थराजवार्तिकका धवलाकारने खूब उपयोग किया है और, जैसा हम ऊपर कह आये है, कहीं शब्दश: और कहीं कुछ हेरफेरके साथ उसके अनेक अवतरण दिये हैं। किन्तु न तो उनके साथ कहीं अकलंकका नाम आया और न 'राजवार्तिकका'। उन अवतरणोंको प्राय: 'उक्तं च तत्वार्थभाष्ये' या 'तत्वार्थभाष्यगत' प्रकट किया गया है। धवलामें एक स्थान (प. ७००) पर कहा गया है---

पूज्यपादभट्टारकैरप्यभाणि--सामान्य-नय-लक्षणमिदमेव। तद्यथा, प्रमाण-प्रकाशितार्थ-विशेष-प्ररुपको नय: इति।

इसके आगे 'प्रकर्षेण मानं प्रमाणम्' आदि उक्त लक्षणकी व्याख्या भी दी गई है। यही लक्षण व व्याख्या ज्ञ्ज्चार्थराजवार्ज्िक, १, ३३, १ में आई है । जयधवला (पत्र २६) में भी यह

व्याख्या दी गई है और वहां उसे 'तत्वार्ग्थभाष्यगत' कहा है। 'अयं वाक्यनय: तत्वार्थ-भाष्यगत:'। इससे सिध्द होता है कि राजवार्तिकका असली प्राचीन नाम 'तत्वार्थभाष्य' है और उसके कर्ता अकलंकका सन्मानसूचक उपनाम 'पूज्यपाद भट्टारक' भी था। उनका नाम भट्टाकलंकदेव तो मिलता ही है।

प्रभाचन्द्र भट्टारक

धवलाके वेदनाखंडान्तर्गत नयके निरुपणमें (प. ७००) प्रभाचन्द्र भट्टारकद्वारा कहा गया नयका लक्षण उद्‌धृत किया गया है, जो इस प्रकार है--

'प्रभाचन्द्र भट्टारकैरप्यभाणि- प्रमाण-व्यपाश्रय-परिणाम-विकल्प-वशीकृतार्थ-विशेष-प्ररुपण-प्रवण: प्रणिधिर्य: स नय इति।'

ठीक यही लक्षण 'प्रमाणव्यपाश्रय' आदि जयधवला (प. २६) में भी आया है और उसके पश्चात् लिखा है 'अयं नास्य नय: प्रभाचन्द्रो य:'। यह हमारी प्रतिकी अशुध्दि ज्ञात होती है और इसका ठीक रुप 'अयं वाक्यनय: प्रभाचन्द्रीय: ' ऐसा प्रतीत होता है।

प्रभाचन्द्रकृत दो प्रौढ न्याय-ग्रंथ सुप्रसिद्ध हैं, एक प्रमेयकमलमार्तण्ड और दूसरा न्यायकुमुदचन्द्रोदय। इस दूसरे ग्रंथका अभी एक ही खंड प्रकाशित हुआ है। उन दोनों ग्रंथोंमें उक्त लक्षणका पता लगानेका हमने प्रयत्न किया किन्तु वह उनमें नहीं मिला। तब हमने न्या. कु. चं. के सुयोग्य सम्पादक पं. महेन्द्रकुमारजीसे भी इसकी खोज करनेकी प्रार्थना की। किन्तु उन्होंने भी परिश्रम करनेके पश्चात् हमें सूचित किया कि बहुत खोज करनेपर भी उस लक्षणका पता नहीं लग रहा। इससे प्रतीत होता है कि प्रभाचन्द्रकृत कोई और भी ग्रंथ रहा है जो अभी तक प्रसिध्दिमें नहीं आया और उसीकेअन्तर्गत वह लक्षण हो, या इसके कर्ता कोई दूसरे ही प्रभाचन्द्र हुए हों ?

धनञ्जयकृत अनेकार्थ नाममाला

धवलामें ‘इति’ के अनेक अर्थ बतलानेके लिये ‘एत्थ उवज्जंतओ सिलोगो’ अर्थात् इस विषय का एक उपयोगी श्लोक कहकर निम्न श्लोक उद्‌धृत किया है--

हेतावेवं प्रकाराद्यै: व्यवच्छेदे विपर्यय: ।

प्रादुर्भावे समाप्तं च इति शब्दं विदुर्बुधा: ।। धवला. अ. ३८७

यह श्लोक धनञ्जयकृत अनेकार्थ नाममालाका है और वहां वह अपने शुध्दरुपमें इस प्रकार पाया जाता है--

हेतावेवं प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इति शब्द: प्रकीर्तित: ।।३९ ।।

इन्हीं धनञ्जयका बनाया हुआ नाममाला कोष भी है जिसमें उन्होंने अपने द्विसंधान काव्यको तथा अकलंकके प्रमाण और पूज्यपादके लक्षणको अपश्चिम कहा है अर्थात् उनके समान फिर कोई नही लिख सका१ (१ देखो पृ. ५३.) ।

इससे यह तो स्पष्ट था कि उक्त कोषकार धनञ्जय, पूज्यपाद और अकलंकके पश्चात् हुए। किन्तु कितने पश्चात् इसका अभीतक निर्णय नहीं होता था। धवलाके उल्लेखसे प्रमाणित होता है कि धनञ्जयका समय धवलाकी समाप्तिसे अर्थात् शक ७३८ से पूर्व है।

धवलामें कुछ ऐसे ग्रंथोंके उल्लेख भी पाये जाते हैं जिनके संबंधमें अभीतक कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वे कहांके और किसके बनाये हुए हैं। इस प्रकारका एक उल्लेख जीवसमासका है। यथा, (धवला प. २८९) जीवसमासाए वि उत्तं--

छप्पंचणव-विहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।

आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ।।

यह गाथा ' उक्तं च ' रुपसे सत्प्ररुपणामें भी दो बार आई है और गोम्मटसार जीवकाण्डमें भी है।

एक जगह धवलाकरने छेदसूत्र का उल्लेख किया है। यथा--

ण च दव्वित्थिणवुंसयवेदाणं चेलादिचाओ अत्थि छेदसुत्तेण सह विरोहादो।

धवला. अ. ९०७.

एक उल्लेख कर्मप्रवादका भी है। यथा--

'सा कम्मपवादे सवित्थरेण परुविदा' (धवला. अ. १३७१)

जयधवलामें एक स्थानपर दशकरणीसंग्रहका उल्लेख आया है। यथा--

........शुष्ककुडयपतितसिकतामुष्टिवदनन्तरसमये निर्वर्तते कर्मेर्यापथं वीतरागाणामिति। दसकरणीसंगहे पुण पुयडिबंधसंभवमेत्तमवेक्खिय वेदणीयस्स वीयरायगुणट्ठाणेसु वि बंधणाकरणमोवट्टणाकरणं च दो वि भणिदाणि त्ति। जयध० अ. १०४२.

इस अवतरणपरसे इस ग्रंथमें कर्मोंकी बन्ध, उदय, संक्रमण आदि दश अवस्थाओंका वर्णन है ऐसा प्रतीत होता है।

ये थोडेसे ऐसे उल्लेख हैं जो धवला और जयधवलापर एक स्थूल दृष्टि डालनेसे प्राप्त हुए हैं। हमें विश्वास है कि इन ग्रंथोंकेसूक्ष्म अवलोकनसे जैन धार्मिक और साहित्यिक इतिहासके सम्बंधमें बहुतसी नई बातें ज्ञात होगी जिनसे अनेक साहित्यिक ग्रंथियां सुलझ सकेंगी।